(पद्मनन्दि पंचविंशति का) छठवाँ अधिकार है। श्रावकाचार का वर्णन है। श्रावक का कैसा आचार होना चाहिए और उस श्रावक के संस्कार ऐसे आचार से बारम्बार उसके कषाय की मन्दता के होते हैं, इसलिए इसका नाम उपासक संस्कार भी दिया गया है। षट्कर्म की व्याख्या चलते हुए तप की व्याख्या है। षट्कर्म हमेशा (होते) हैं न।

बात तो यह है कि आत्मा... पहली बात यह ली थी, दूसरी गाथा से। बिल्कुल जहाँ विकल्प का करना ही नहीं है, ऐसा जो स्वभाव अन्तर में दृष्टि में आने से आत्मा का ज्ञाता-दृष्टापना प्रगट हो, तब से उसे सम्यग्दर्शन की भूमिका शुरु होती है। यह बाद की बात है। करना ही नहीं। मैं मुझे देखूँ, ऐसा विकल्प भी जहाँ नहीं है। मैं राग को देखूँ या पर को देखूँ, यह बात तो है ही नहीं। परन्तु मैं मुझे देखूँ, ऐसा जहाँ नहीं। देखनेवाला-जाननेवाला जाने और देखे, ऐसी कर्तृत्वबुद्धिरहित दशा हो, उसे प्रथम सम्यग्दर्शन की भूमिका कहने में आता है। समझ में आया? क्योंकि आत्मा तो अकेला चैतन्यसूर्य है। इससे उसके मूलस्वभाव में पर का करना या राग का करना, वह इसके स्वरूप में ही नहीं है। उसके द्रव्य में और उसके गुणस्वभाव में वह कभी गन्ध नहीं है। समझ में आया? ऐसा आत्मा अकेला चैतन्यसूर्य कि जो जानने-देखने का, देखे और जाने—ऐसा जहाँ स्थिर हो जाए... समझ में आया? मैं देखूँ और जानूँ—ऐसा भी नहीं। शोभालालभाई! यह भी नहीं। अमरचन्दजी!

देखने और जानने का स्वभाव, ऐसी चैतन्यमूर्ति, जिसमें विकल्प का उत्पन्न-उत्पन्न होना जहाँ नहीं, ऐसा चैतन्यसूर्य स्वभाव दृष्टि में आने पर ऐसा कहना, वह भी भेद है। परन्तु वह दृष्टि जहाँ ज्ञाता-दृष्टारूप से स्थिर हो जाए, ऐसी दृष्टि का नाम भगवान सम्यग्दर्शन कहते हैं और उसमें प्रगट हुआ ज्ञान, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। ऐसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान की भूमिकासहित पंचम गुणस्थान के योग्य श्रावक की दशा, स्वभाव में सावधानरूप से जरा विशेषरूप से स्व के प्रयत्न के झुकाव में जाने से जो कुछ शान्ति और स्थिरता के अंश विशेष सम्यग्दर्शन उपरान्त जो प्रगट हुआ, उसे पंचम गुणस्थान

की दशा कहा जाता है। समझ में आया? उसे षट्कर्म का सहज विकल्प अन्दर आता है। उसे चरणानुयोग की पद्धति में वह करता है, ऐसा व्यवहारनय से कथन की पद्धति आती है। आहाहा! सेठ! यह सब समझना पड़ेगा, हों!

कहते हैं, ऐसे आत्मा के रास्ते-पंथ में चढ़ा हुआ पंथी गृहस्थाश्रम में हो, राजपाट में हो, तो भी वस्तु के स्वभाव को जिस प्रकार से वस्तु, वस्तु के स्वरूप से है, उस प्रकार से दृष्टि और ज्ञान होने के उपरान्त स्वरूप में स्थिरता विशेष न हो, थोड़ी हुई, विशेष न हो, इससे ऐसे षट्कर्मों के शुभभाव सम्यग्दृष्टि श्रावक को आये बिना, हुए बिना नहीं रहते। उसमें पाँचवाँ बोल तप का चलता है।

पहला बोल—देव की सेवा। भगवान सर्वज्ञदेव परमात्मा, पूर्ण स्वयं को होना है न, इसलिए पूर्ण अपने विषय में है, पूर्ण स्वभाव जिसकी दृष्टि के विषय में है और पर्याय में जिसे पूर्ण होना है। ऐसे जीव को पूर्ण परमेश्वरता जिनकी प्रगट हुई, उनकी सेवा का भाव दिन-प्रतिदिन शुभराग वास्तव में तो उसके क्रम में उसकी भूमिका में आता है। उसे यहाँ ऐसा कहने में आता है कि उसे भगवान की पूजा हमेशा करना चाहिए। समझ में आया?

गुरु की सेवा। उसका भाव भी स्वयं से बढ़े हुए, गुण में अग्रसर, वे (देव) पूर्ण प्राप्त और यह गुण में अग्रसर, इनकी भी सेवा का भाव उसे दिन-प्रतिदिन आता है। सज्झाय। हमेशा शास्त्र का स्वाध्याय करे। एक-दो लाईन (पढ़कर) कुछ कर गये, (ऐसा माननेवाले) बहुत आते हैं। हमारे षट्कर्म की प्रतिज्ञा है। पुस्तक पड़ी हो, एक पृष्ठ ले लेवे, दो लाईन फिरावे (माने कि) स्वाध्याय हो गयी।

मुमुक्षु : एक समय का भी धर्म हुआ न।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु धर्म... एक समय का भी देखे, ऐसा होता है या नहीं? समझ में आया?

यह स्वभाव जो श्रद्धा-ज्ञान में प्रगट हुआ, उसे पूर्ण प्रगट नहीं हुई और पूर्णता स्वयं को प्रगट नहीं हुई, जिन्हें पूर्णता प्रगट हुई और पूर्णता प्रगट होने के पन्थ में स्थित गुरुओं की सेवा का भाव, साथ में शास्त्र क्या कहना चाहते है, उसकी विशेष निर्मलता

के लिये परालम्बी-परसत्तावलम्बी इस सज्झाय का बोध है। ऐसा भाव... अष्टपाहुड़ में तो ऐसा भी कहते हैं, ज्ञानी को इन सबको—व्यवहार को भी प्रयत्न द्वारा पुरुषार्थ से जानना चाहिए। ऐसा वह श्लोक आता है। मूल में श्लोक आता है। अष्टपाहुड़। समझ में आया? किस जगह आता है, यह कहीं सब याद है? कहीं है अवश्य। और एक बार बात भी हो गयी है। देखो! यह। इस वस्तु की मर्यादा में षट् द्रव्य, नव तत्त्व के भेद, देव-गुरु-शास्त्र का क्या कहना है, ऐसे शास्त्र का पठन का, स्वाध्याय का शुभराग उसे आये बिना नहीं रहता। इसलिए उसे स्वाध्याय करना चाहिए, ऐसा चरणानुयोग की पद्धति में आता है। समझ में आया?

संयम। प्रतिदिन जब उसे संसार के भोग के अन्दर पड़ा है, अशुभभाव है न, दृष्टि स्वभाव पर पड़ी है परन्तु अशुभभाव की बारम्बार लहरियाँ-तरंगें उठती है, इससे उसे संयम अर्थात् उसमें से इन्द्रिय दमन और छह काय की हिंसा से विमुख होना, ऐसा संयमभाव, शुभभाव उसके योग्य प्रतिदिन आये बिना नहीं रहता। समझ में आया? ये चार (हुए)।

पाँचवें तप की बात अभी चलती है। तप की व्याख्या करते हुए यहाँ तक आया कि यथाशक्ति पर्व के दिन में उसे उपवास आदि शुभभाव करने का भाव करना। करना चाहिए।

मुमुक्षु : उपवास करना या नहीं करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपवास की व्याख्या ही यह है कि आज मुझे आहार नहीं करना। यह कथनपद्धति ऐसी है। करना नहीं, अर्थात् उस ओर के झुकाव की वृत्ति आज मुझे नहीं है। नहीं क्यों? कि स्वभाव सन्मुख का जितना प्रयत्न में उत्साह है, उतना आहार को लेने का परसन्मुख का उत्साह मन्द पड़ गया है। ऐसा भाव विकल्प वाला, हों! अपवास करूँ, ऊनोदर करूँ, आहार थोड़ा लूँ—ऐसा भाव उसे आये बिना नहीं रहता। यह तो धर्म के मार्ग में चढ़े हुए पंथियों के पन्थ हैं। समझ में आया?

पश्चात् तो कहा कि जो अपने स्वरूप को सम्यग्दर्शन को मलिन अर्थात् विरोध करनेवाले हों अथवा व्रत की मलिनता में निमित्त हो, ऐसे देश को छोड़ देना, मनुष्य को

छोड़ना, यह लक्ष्मी ऐसी मिलती हो तो उस लक्ष्मी को छोड़ना। पाप के रास्ते से लक्ष्मी मिलती हो तो श्रावक को वह रास्ता छोड़ देना चाहिए। कहो, समझ में आया? आता है न एक? रत्नकरण्ड श्रावकाचार में एक श्लोक ऐसा आता है। श्रावक विचार करता है कि यदि मुझे मेरे स्वरूप की सम्पदा है तो फिर दूसरी सम्पदा हो या न हो, उसका क्या काम है? और स्वरूप की सम्पदा न हो तो दूसरी सम्पदा हो तो मुझे उसका क्या काम है? समझ में आया? सेठ! समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। दृष्टि में ऐसा विकल्प उसे शुभराग का आये बिना नहीं रहता। भगवान! मेरी सम्पदा मेरे पास है। अब यह सम्पदा कम हो या अधिक हो, उसके साथ मुझे क्या काम है? अर्थात् तीव्र पाप के रास्ते से लक्ष्मी आती हो तो उसे श्रावक छोड़ दे, त्याग करे। उस रास्ते पाप करके लक्ष्मी ले नहीं। समझ में आया? न आश्रित, ऐसा आया न?

पश्चात् भोगोपभोग में थोड़ा काल कम करे। पश्चात् रत्नत्रय का आश्रय करनेवाले दूसरे जन्म में उसकी श्रद्धा बढ़ती जाए। देखो! यह तप की व्याख्या। अपने आत्मा को शुद्ध श्रद्धा से संस्कार किया है, शुद्ध ज्ञान के संस्कार इतने डाले हैं कि जो संस्कार परभव में भी स्वर्ग में साथ में आते हैं। समझ में आया? स्वयं जहाँ रहनेवालाा है, वहाँ वह रहे, ऐसा कहते हैं। ऐसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के संस्कार अन्दर करे, डाले, दृढ़ करे कि जन्मान्तर में भी वह स्मरण उसे आवे। सम्यग्दृष्टि जहाँ स्वर्ग में उत्पन्न हो, जहाँ जन्म हो... जन्म अर्थात्? उसे सिर पर वस्त्र आदि होते हैं, उसकी शय्या में बत्तीस वर्ष का युवक जैसे हो, वैसे दो घड़ी में देव उत्पन्न हो जाता है और एकदम स्मरण आता है कि ओहो! कहाँ था मैं, यह कहाँ आया? अरे! मेरी पुरुषार्थ में मन्दता रह गयी, इससे इस स्वर्ग के योग में-संयोग में आना पड़ा। मेरे आत्मा के संस्कार तो, मैं शुद्ध चैतन्य हूँ, ऐसी स्मृति उसे उत्पन्न होने पर शय्या में देव उत्पन्न हो। सम्यग्दृष्टि श्रावक तो स्वर्ग में वैमानिक में देवरूप से ही उपजता है। दूसरी गति उसे नहीं हो सकती। जहाँ उपजे वहाँ ऐसा... ओहो! हम तो आत्मा के आनन्द और ज्ञान के स्वामी। सहजात्मस्वरूप चैतन्य के स्वामी। हमारी अस्थिरता पूर्ण नहीं टली; इसलिए राग बाकी रहा, उसका पुण्य बँधा।

उसके फल में संयोग रहा, स्वभाव की अधूराई रह गयी। समझ में आया? ऐसी स्मृति स्वर्ग में भी उसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान के संस्कार खड़े होते हैं। समझ में आया? ऐसे पक्के संस्कार डालना चाहिए।

एक गाली दी हो तो इसे कैसी याद रहती है? इसी प्रकार गुण याद रहना चाहिए, ऐसा कहते हैं। कोई गाली-गाली देते हैं न? विवाह प्रसंग में या (दूसरे प्रसंग में) पचास वर्ष में याद करे कि उस दिन लड़की के विवाह में तूने गाली दी थी, सब ५०० लोग बैठे थे, मुझे याद है। भान में... अरे! परन्तु यह याद (रह गया)? गाली को गाँठ बाँधी। गाँठ बाँधी कहा न?

(यहाँ तो) गुण को गाँठ बाँधा। अहो! मैं तो आनन्द, ज्ञानस्वरूप निर्विकल्प पदार्थ अकेला अनादि चैतन्य ज्ञायकसूर्य। ऐसे वहाँ जन्मते हुए इसे स्मरण में आ जाए। एकदम..! ओहो! भान लेकर गया है। ऐसे संस्कारसहित जाए, उसे यहाँ तप कहने में आता है। तप के अधिकार में यह वर्णन किया गया है। आहाहा! अब २९।

विनयश्च यथायोग्यं कर्तव्यः परमेष्ठिषु।
दृष्टिबोधचरित्रेषु तद्वत्सु समयाश्रितैः।।२९।।

जिनेन्द्र भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर के सिद्धान्त का अनुयायी है। अनुयायी। सर्वज्ञ परमेश्वर के कहे हुए सिद्धान्त, उनका अनुयायी। अन्तर में अविकारी वीतराग शुद्ध स्वभाव समय अर्थात् आत्मा, उसका अनुयायी हुआ है। **'समयाश्रितैः'** समझ में आया? भगवान ज्ञानस्वरूप चैतन्य, अकेला देखना-जानना, ऐसा जिसमें भेद भी नहीं। ऐसी मेरी चीज़ अनादि ऐसी ही है। थी, वैसी दृष्टि में आयी है। ऐसा जिसे भान हुआ है, वह कहता है, उसे वीतराग ने कहे हुए जैन सिद्धान्त का अनुयायी कहा जाता है।

आत्मा का अनुयायी हुआ है। सर्वज्ञ ने देखा, वह आत्मा। भगवान ने देखा आत्मा, विकल्प, कर्म और रागरहित देखा है। तुझे आत्मा कहा, वह उन्होंने कहा था। समझ में आया? भगवान की वाणी में ऐसा आया था कि तू अर्थात् कौन? तू अर्थात् ज्ञायक अनन्त आनन्द का कन्द-धाम, वह आत्मा। रागादि आत्मा या शरीरादि आत्मा या कर्म आदि (आत्मा) भगवान ने देखा नहीं, भगवान ने कहा नहीं, वस्तु में दूसरा है नहीं। समझ

में आया? ऐसे इस आत्मा के आश्रय से, समय के आश्रय से रहे हुए बाहर में जैन सिद्धान्त के भक्त होते हैं। वीतराग के सिद्धान्तों के भक्त होते हैं।

जो जिनेन्द्र के सिद्धान्त के अनुयायी हैं, उन भव्य जीवों को योग्यता अनुसार... देखो! **'परमेष्ठिषु'** (शब्द है)। **'परमेष्ठिषु'। उत्कृष्ट स्थान में रहनेवाले...** पाँच परमेश्वर। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, उनका हमेशा विनय करे। इसके हृदय में उनका बहुमान रहा ही करे। ऐसा नहीं, यह दासानुदास रहे। ऐसा नहीं कि भगवान कौन? परमेश्वर कौन? ओहो! पूर्ण नहीं हुआ और पूर्ण हुए का, पंच परमेष्ठी का इसे हमेशा विनय होता है। समझ में आया? और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र में भी विनय करे। **'दृष्टिबोधचरित्रेषु'** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। पंच परमेष्ठी के अतिरिक्त। अपने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का बहुमान करे और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र प्राप्त दूसरे जीव हों, उनका भी बहुमान करे। पाँच परमेष्ठी का, अपने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र प्राप्त का बहुमान करे। उसमें भी अन्दर में ऐसे विकल्प तो है। यह बहुत ऊँचा, यह एक विकल्प है। समझ में आया?

अपना सम्यक् शुद्ध चैतन्य श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, यह उत्तम है, यह ऊँचा है, ऐसा विनय का विकल्प सम्यक् श्रावक को आये बिना नहीं रहता। पंच परमेष्ठी का विनय करे। भगवान कौन? बापू! ऐसा नहीं होता। भगवान का तो दासानुदास है। साधु का दासानुदास है। साधु हों उनका, हों! साधु किसे कहना, यह समझना। शोभालालभाई! सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के... ...कहते हैं न? ओहो! इन सन्त के दर्शन! आहाहा! ऐसे पूर्ण आनन्द के अमरधाम में झूलते होते हैं। क्षण में विकल्प, क्षण में आनन्द, क्षण में विकल्प, क्षण में आनन्द। आहाहा! ऐसी आनन्द की भूमिका सन्तों को चारित्र की रमणतापूर्वक जिन्हें प्रगट हुई है, ऐसे सन्तों का ज्ञानी को विनय, श्रावक को बहुत विनय होता है, बहुमान होता है। समझ में आया? परन्तु ऐसा स्वरूप न हो और बाहर से माने, उनका विनय न करे, इसलिए गुरुओं का और ज्ञानी का अविनय करता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? अमरचन्दजी!

इनके धारण करनेवाले महात्माओं के प्रति विनय अवश्य करना चाहिए। इसका

विशेष स्पष्टीकरण भावार्थ में अधिक लिखा है। बाकी अन्तिम गाथा में आता है, देखो! आयेगा। ३६वीं है न? अन्तिम... पूरा होता है उसमें।

समयस्थेषु वात्सल्यं, स्वशक्त्या ये न कुर्वते।
बहुपापावृतात्मानः, ते धर्मस्य परान्मुखाः।।३६।।

यह दान में व्याख्या की है। अब जो दान की व्याख्या आयेगी न? उसका यह अन्तिम श्लोक लिया है। समझ में आया? **'समयस्थेषु'** सच्ची श्रद्धा, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र में जो रहे हुए हैं। शुद्ध चैतन्य की श्रद्धा सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। स्वमत-स्थेषु। उसमें रहे हुए हैं। **'वात्सल्यं'।** जैसे गाय को बछड़े के प्रति प्रेम है, उसी प्रकार धर्मात्मा को साधर्मी के प्रति प्रेम होता है, वात्सल्य होता है। समझ में आया?

'स्वशक्त्या ये न कुर्वते' वापस ऐसा शब्द पड़ा है, हों! **साधर्मी सज्जनों में शक्ति के अनुसार... 'न कुर्वते' 'बहुपापावृता'।** देखो! दान की व्याख्या में यह कहा है। **परान्मुख है अर्थात् धर्म के अभिलाषी नहीं है;...** प्रबल पाप से ढँका हुआ उसका आत्मा है। **इसलिए भव्य जीवों को साधर्मी मनुष्यों के साथ अवश्य प्रीति करनी चाहिए।** समझ में आया? देवीलालजी! व्यवहार की रीति भी उसके योग्य भूमिका प्रमाण होती है। समझ में आया? वह स्वच्छन्दी नहीं हो जाता। उसे अपनी अपेक्षा गुण में अधिक देखे तो उनका बहुमान (आता है)। **'समयस्थेषु वात्सल्यं'** जैसे गाय को अपने बच्चे में प्रेम आता है; उसी प्रकार। गाय प्रेम में ऐसा नहीं देखती, यदि बाघ बच्चे को खाने आया हो तो सामने आ पड़ती है। भाई! उसके बच्चे को कोई बाघ या सिंह खाने आया हो तो सामने सिर मारती है। विचार नहीं करती कि यह मेरी ताकत है या नहीं? उसके प्रेम में या उसके प्रेम की आड़ में वह देख नहीं सकती।

इसी प्रकार धर्मात्मा को सच्चे धर्मी—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त, उनका बहुमान और विनय, वात्सल्य, प्रेम अन्दर आये बिना नहीं रहता। दुनिया की दरकार छोड़कर (वात्सल्य आता है), हों! ऐसा। बाघ सामने पड़ता है न? मरण की दरकार छोड़ देती है। उसी प्रकार दुनिया क्या कहेगी? दुनिया कैसा मानेगी? दरकार छोड़कर दान के अधिकार में भगवान पद्मनन्दि आचार्य ने सम्यग्दर्शन, ज्ञान,

चारित्र को प्राप्त, उनका वात्सल्य और प्रेम करे। स्वशक्ति अनुसार। **'ते धर्मस्य परान्मुखाः'** नहीं तो वह धर्म से पराङ्मुख है। यह दान के अधिकार में वर्णन किया है। कहो, समझ में आया?

अब, अपने तीसवाँ श्लोक।

गाथा ३०

दर्शनज्ञानचारित्र, -तपः प्रभृति सिद्धयति।
विनयेनेति तं तेन, मोक्षद्वारं प्रचक्षते।।३०।।

अर्थ : विनय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तथा तप आदि की प्राप्ति होती है; इसलिए उस विनय को गणधर आदि महापुरुष मोक्ष का द्वार कहते हैं। अतः मोक्ष के अभिलाषी भव्यों को यह विनय अवश्य करनी चाहिए॥३०॥

गाथा - ३० पर प्रवचन

दर्शनज्ञानचारित्र, -तपः प्रभृति सिद्धयति।
विनयेनेति तं तेन, मोक्षद्वारं प्रचक्षते।।३०।।

यह तप के भेद में विनय को तप में डाला है। है विकल्पात्मक विनय। निश्चयविनय। विशेष—नय। आत्मा के पूर्ण स्वभाव का ज्ञान, ध्यान, आनन्द और अपने बहुमान में रहना, वह अन्दर का निश्चय स्वभाव का विनय है। परन्तु ऐसा विकल्प रागी प्राणी है; इसलिए उसे धर्मात्मा के प्रति बहुमान—विनय का भाव, जिसे यहाँ तप में गिनने में आया है, (वह आये बिना नहीं रहता)। क्यों? उसमें निर्मानपना आता है। इतनी दुनिया की दरकार छोड़नी पड़ती है। इतना बड़ा व्यक्ति होकर ऐसा? अमुक होकर ऐसा? एक हरिजन हो और सम्यग्दर्शन, ज्ञान प्राप्त हो, तो भी धर्मी को उसके प्रति बहुमान और आदर आये बिना नहीं रहता। नरभेरामभाई! समझ में आया? लो, हम बड़े बुद्धिवाले, हम बड़े रूपवान, हमारे पास पाँच-पचास की पूँजी। पाँच-पचास लाख, हों!

पाँच-पचास रुपये अभी चलते हैं, ऐसा नहीं। पाँच-पचास लाख की पूँजी तथा यह और एक साधारण। ओहो! आत्मा कहाँ साधारण है। शरीर भले हरिजन का हो , शरीर भले स्त्री का हो। शरीर भले नपुंसक भी कोई सम्यग्दर्शन पाता है। नारकी नपुंसक है। नारकी पाता है या नहीं ? श्रेणिक राजा अभी नपुंसक है। क्षायिक समकिती हैं। आहाहा! भाई! शोभालालभाई! पहले नरक में वह श्रेणिक राजा। अमरचन्दभाई! गये हैं न वहाँ ? क्षायिक समकित। तीर्थंकर होनेवाले हैं। एक ही देह बाकी है। तीर्थंकर की अन्तिम। आहाहा! तथापि वहाँ अभी नपुंसक है। उन्हें स्त्री, पुरुष वेद नहीं है। क्षायिक समकिती धर्मात्मा है, धर्मी है। समझ में आया ? उनका ज्ञानी को बहुमान आये बिना नहीं रहता। आहाहा!

नारकी। यह शरीर ऐसा है, शरीर में टुकड़े हुए। वह जड़ का है, सुन न! वह अखण्ड हुआ है यह ? जिसमें दृष्टि से चैतन्यबिम्ब अखण्डपने की (श्रद्धा हुई है)। अखण्ड एकरूप अभंग अभेद, ऐसा अनुभव हुआ। जाओ! मोक्ष के पन्थ में। समझ में आया ? नारकी का शरीर हो, हरिजन का शरीर हो, चाण्डाल का शरीर हो, स्त्री का शरीर हो। अरे! ढोर-गधा हो। बाहर में गधा अन्दर में भगवान। आहाहा! भाई! नवनीतभाई! शरीर ऐसा मिल गया। ढाई द्वीप के बाहर असंख्य श्रावक पड़े हैं। सुना है ? किसमें आता है ? यह बात किसमें आती है ? यह भूल गये। खामणा में नहीं आता ? उसे भूल गये ? खामणा में आता था, ढाई द्वीप के बाहर, ढाई द्वीप में।

मुमुक्षु : वह तो स्थानकवासी के खामणा में न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह याद नहीं आया, इसलिए इसने बहाना निकाला। याद नहीं आया, इसलिए बहाना निकाला इसमें। बाद में याद आया। हसुभाई कहाँ गये ? कहो, समझ में आया ? आहाहा!

ढाई द्वीप के बाहर असंख्य सिंह, असंख्य हाथी, असंख्य चिड़िया, असंख्य तोता, असंख्य मगरमच्छ समकिती है। पाँचवें गुणस्थानवाले हैं। ढाई द्वीप के बाहर। ढाई द्वीप में तो श्रावक थोड़े संख्यात हैं। बाहर असंख्यात हैं। ओहो! वहाँ से स्वर्ग में जाकर, अन्त में मनुष्य होकर, केवल (ज्ञान) लेकर कितने ही मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा! अमरचन्दभाई! है या नहीं ? ढाई द्वीप के बाहर। असंख्यात श्रावक ढोर। शरीर, चमड़ी

ढोर की। अन्दर भगवान का भान हुआ। उसे भगवान का भान हुआ है। उसे परमेश्वर प्रगट हो गया है। समझ में आया? पाँचवें गुणस्थानवाले, हों! पंचम गुणस्थानवाले। वे असंख्य, चौथेवाले ढाई द्वीप के बाहर असंख्य हैं। भगवान के शास्त्र में (आता है)। खामणा में आता है, खामणा में। और इसमें भी—धवल में जगह-जगह आता है। असंख्य द्वीप-समुद्र। एक स्वयंभूरमण असंख्य योजन का लम्बा-चौड़ा है। असंख्य योजन में पानी। उसमें असंख्यात समकिती पड़े हैं। पानी में पड़े हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हवा में है। उसमें क्या? पत्थर में है। वहाँ बाहर में क्या है? यहाँ तो बँगला और खाने-पीने के साधन और मोटरें और कितने ही इसे ... होता हो। आहाहा!

इस प्रकार चैतन्य का आश्रय किया है, चैतन्यरत्न को झंझोरकर जगाया है। समझ में आया? विष्टा के टोकरे में भी यदि रत्न पड़ा हो, तो भी वह रत्न ही है। अमरचन्दभाई! आहाहा! विष्टा के टोकरे में करोड़ का हीरा पड़ा हो तो, हीरा, हीरा ही है। उसी प्रकार चमड़ी पशु की हो परन्तु जहाँ आत्म हीरा का भान हुआ तो वह हीरा ही है। पशुगति में हो, नरक में हो, देव में हो, अरे! व्यन्तरी देवी भी समकित पाती है। समझ में आया? वहाँ जन्मती है, तब भले मिथ्यात्व लेकर जाए, परन्तु पश्चात् कोई भगवान के दर्शन आदि में आकर (समकित पाती है)।

मुमुक्षु : देव में तो समकित पाने का...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... भगवान के दर्शन में आवे। उसमें कोई प्राणी अन्दर उल्लास... उल्लास... उल्लास... उल्लास... ओहोहो! ऐसा प्रभु मेरे पास डोलता है और मैं कहाँ खोजने जाता था। ऐसा प्रभु मेरे पास पड़ा है, मैं कहाँ खोजने जाता था। इस प्रकार उल्लास में आकर अन्दर डूब जाता है, एकदम! समझ में आया?

कहते हैं कि ऐसे **'दर्शनज्ञानचारित्र,-तपः प्रभृति सिद्धयति, विनयेनेति' तप आदि की प्राप्ति होती है...** ऐसे विनय से सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है, यहाँ तो ऐसा कहते हैं, ज्ञान प्राप्त होता है, चारित्र प्राप्त होता है, इच्छानिरोध होता है। **'विनयेनेति तं**

तेन, मोक्षद्वारं प्रचक्षते' इसलिए भगवान उसे मोक्ष का द्वार कहते हैं। विनय को मोक्ष का द्वार (कहते हैं)। आता है न? क्षमा, वह उत्तम दरवाजा... नहीं कहीं कहा? कहाँ? वडवा। क्षमा। खबर है यह क्षमा की बात। क्षमा, वह मोक्ष का भव्य द्वार है। यहाँ विनय को **'मोक्षद्वारं प्रचक्षते'** (कहा है)। भगवान पद्मनन्दि आचार्य मुनि सन्त छठवें-सातवें में झूलनेवाले आनन्दकन्द में झूलनेवाले मुनि हैं। वे कहते हैं कि विनय मोक्ष का द्वार है। उस द्वार से मोक्ष में जाया जा सकता है। बहुमान... बहुमान... ओहोहो! समझ में आया?

यह तप का अधिकार कहा। अब षट्कर्म में छठवाँ रहा। दान... दान। अब दान भी दिन-प्रतिदिन (होता है), हों! एक दिन दो ग्रास दिये और दान (किया), ऐसा नहीं। अब यह दान का जरा कठिन आयेगा। वहाँ से ईशारा हो गया अन्दर में।

गाथा ३१

सत्पात्रेषु यथाशक्ति, -दान देय गृहस्थितैः।
दानहीनाभवेत्तेषां, निष्फलैव गृहस्थता।।३१।।

अर्थ : धर्मात्मा गृहस्थों को मुनि आदि उत्तमपात्रों में शक्ति के अनुकूल दान भी अवश्य देना चाहिए क्योंकि बिना दान के गृहस्थों को गृहस्थपना निष्फल ही है॥३१॥

गाथा - ३१ पर प्रवचन

सत्पात्रेषु यथाशक्ति, -दान देय गृहस्थितैः।
दानहीनाभवेत्तेषां, निष्फलैव गृहस्थता।।३१।।

धर्मात्मा गृहस्थों को मुनि आदि उत्तम पात्रों को शक्ति के अनुसार दान भी अवश्य देना चाहिए... है शुभभाव। भानसहित, कर्तृत्वबुद्धि रहित। भानसहित कर्तृत्वबुद्धि रहित। परन्तु व्यवहारनय से उसका परिणमन है, इसलिए दान देने का भाव करता है,

ऐसा दिन-प्रतिदिन उसका कर्तव्य है, ऐसा आवश्यक के कर्तव्य में कहने में आता है। मैं करूँ, करनेयोग्य है, ऐसी बुद्धि नहीं है। परन्तु राग का परिणमन है, इसलिए परिणमे, वह कर्ता—ऐसा कहकर (करता है, ऐसा कहने में आता है)। अमरचन्दभाई! मैं करूँ, ऐसी बुद्धि नहीं है। परन्तु परिणमन है, वह कर्ता, परिणमे वह कर्ता—यह अपेक्षा लेकर ज्ञानी भी पुण्यभाव को करता है, ऐसा कहने में आता है। यह चरणानुयोग की पद्धति की रीति है। ...चन्दभाई! कहो, समझ में आया इसमें? देखो! क्या कहते हैं?

धर्मात्मा गृहस्थों को मुनि आदि उत्तम पात्रों को... सम्यग्दृष्टि हो, श्रावक हो; सम्यग्दृष्टि जघन्य पात्र है, श्रावक मध्यम पात्र है, मुनि उत्तम पात्र है। उन्हें **शक्ति के अनुसार...** भाषा (है)। विशिष्टता यहाँ है। **'यथाशक्ति'** पद है न? वहाँ विवेक है। **'यथाशक्ति'** शब्द पड़ा है न? भाई! इसका अर्थ सम्यग्दृष्टि श्रावक है, उसे दान में यथाशक्ति प्रमाण में करे, ऐसा उसे विवेक होता है। समझ में आया? अपनी योग्यता अनुसार। पाँच हजार की पूँजी हो और पाँच हजार दे देवे तो भी वह शक्ति प्रमाण नहीं है। समझ में आया? पाँच लाख की पूँजी हो और पाँच रुपये दे तो भी वह शक्ति प्रमाण नहीं है।

यहाँ शक्ति प्रमाण (कहा) उसमें पूरा महा विवेक है। उसमें आता है न? भाई! सोलहकारण भावना। नहीं? तीर्थंकर गोत्र बँधे, उसमें यथाशक्ति तप त्यागः। यह विवेक का बोल है। सोलह प्रकार है तो विकल्प-राग। क्योंकि दर्शनशुद्धि से कहीं तीर्थंकर गोत्र नहीं बँधता। दर्शनशुद्धि में ऐसा एक विकल्प उठा है, उससे तीर्थंकर गोत्र बँधता है। उसमें सोलह बोल में एक बोल लिया है कि यथाशक्ति तप त्यागः। शक्ति प्रमाण तप करे और शक्ति प्रमाण त्याग करे। समझ में आया? एकदम उछल जाए और हठ से करे, वह ज्ञाता-दृष्टा में नहीं हो सकता। चन्दुभाई! समझ में आया इसमें? उसका पुरुषार्थ ज्ञाता-दृष्टा में सहजरूप से कितना रहता है और सहज हठ बिना उस भूमिका के योग्य तप और त्याग की योग्यता कितनी है, इसका ज्ञानी को विवेक होता है। एकदम मर जाए, संथारा करके तड़पे और मरे, वह ज्ञानी को नहीं हो सकता। छोड़ दो, शरीर ऐसा है। भाई! शक्ति देखो। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव देखो। खोजकर, तेरा पुरुषार्थ कितना

काम करता है ? कितना आगे बढ़ सकेगा ? वहाँ से आगे जाकर वापस हटना न पड़े, ऐसे यथाशक्ति श्रावक और त्याग और तप में विवेक रखता है।

इसी प्रकार दान में यथाशक्ति। यथाशक्ति के दो अर्थ हैं। शक्ति अधिक देने की हो और कम दे तो यथाशक्ति से नहीं दिया। समझ में आया ? **शक्ति के अनुसार दान भी अवश्य देना चाहिए। क्योंकि बिना दान के गृहस्थों का गृहस्थपना निष्फल है।** इसमें कुछ फल नहीं है। उसमें आया था न ? पहले पाँचवीं गाथा कही थी। पाँचवीं में एक शक्ति आती है वहाँ, हों! श्रावक में। श्रावक का है न ? पाँचवीं। गाथा पाँच। पाँच है न ? शक्ति शब्द पड़ा था न ? शक्ति शब्द है, भाई देखो! शक्ति है दूसरे पद में। पृष्ठ २१८, श्रावक के अधिकार में (देशव्रतोद्योतन अधिकार की) पाँचवीं गाथा।

सम्यग्दर्शनपूर्वक आठ मूलगुणों का पालन करना, अहिंसादि पाँच अणुव्रतों का धारण करना, दिग्व्रतादि तीन गुणव्रत तथा दशोवगाशिक आदि चार शिक्षाव्रत है, इन सात शीलव्रतों का पालन करना, रात में खाद्य-स्वाद्य आदि चतुर्विध आहार का त्याग करना, स्वच्छ कपड़े से छाने हुए जल का पीना, शक्ति के अनुकूल मौन आदि व्रतों का धारण करना,... शक्ति के अनुसार। अपनी शक्ति देखे, उसके प्रमाण में मौन आदि व्रत को शक्ति प्रमाण धारण करे। दूसरे की देखादेखी के नहीं करे, हठ से नहीं करे, देखादेखी से नहीं करे। देखो! यह उसका विवेक है। त्याग में, तप में, दान में और व्रत में सबमें शक्ति ली है। भाई! तीर्थंकर में त्याग और तप लिया, यहाँ व्रतादि में लिया, दान में शक्ति में लिया। सर्वत्र विवेक बतलाते हैं।

अपना ज्ञान, दर्शन में भान होने पर भी कितनी स्थिरता मेरी सहज रहती है और विकल्प की कितनी मर्यादा देने-लेने में स्थिर नहीं होता, उसका विवेक करके, उस व्रत को यथाशक्ति धारण करता है। एकदम हड़बड़ करके ले लेवे कि लाओ, हम ले लेते हैं। हुडहुड हमारी गुजराती भाषा है। एकदम।

मुमुक्षु : हुडाहड कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं ? हुडाहड। लो, हुडाहुड कहते हैं। एकदम हुडाहुड करे कि करो नियम।

मुमुक्षु : हरिफाई चले।

पूज्य गुरुदेवश्री : हरिफाई।

स्वयं शक्ति को देखकर करता है। पश्चात् १६वीं में कहीं डाला है। १६, १७, १८ है। १६ में यथाशक्ति है। **'शक्त्या'** है, देखो! दान का अधिकार है न? श्रावक का, हों! श्रावक का अधिकार है। २२५ पृष्ठ। १६वीं गाथा। **भूतकाल में बड़े-बड़े राजा, पुत्र को राज्य देकर, याचकजनों को धन देकर और समस्त प्राणियों को अभयदान देकर, अनशनादि उत्तम तपों का आचरण कर, अविनाशी सुख के स्थान मोक्ष को प्राप्त हुए हैं; इसलिए मोक्ष का सबसे प्रथम कारण एक दान ही है...** गृहस्थाश्रम की बात लेनी है न। शुभभाव की। जिस अपेक्षा से जहाँ है, (वहाँ उस अनुसार बात करते हैं)। **दान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है...** राग की मन्दता, उसमें तीव्र राग टलता है और स्वभाव सन्मुख की दृष्टि है। इसलिए क्रम-क्रम से जैसे यहाँ तीव्र राग मिटाकर मन्द राग करता है, मन्द राग मिटाकर वीतराग होगा। इसलिए उसे क्रम से उससे मोक्ष होता है—ऐसा व्यवहार से कहने में आया है। समझ में आया? शब्दों को पकड़ते हैं। आहाहा! देखो! वापस क्या कहा है?

अतः विद्वानों को चाहिए... **'बुधैः'** शब्द पड़ा है न? **'प्रथमतो, दानं निदानं बुधैः'** ज्ञानियों को **'बुधैः शक्त्या'** वापस ऐसा है, हों! **धन तथा जीवन को जल के बुलबुले के समान अत्यन्त विनाशीक समझकर,...** धन और जीवन तो पानी का बुदबुदा है। परपोटा समझते हो? पानी में बुदबुदे होते हैं। हवा लगे और बदल जाएगा। इसी प्रकार आयी हुई लक्ष्मी और जीवन क्षण में फू... हो जाएगा। ऐसा समझकर **सर्वदा शक्ति अनुसार उत्तमादि पात्रों को दान देवें।** शक्ति अनुसार। देखो! यह विवेक शब्द प्रयोग किया है। आचार्य महाराज पद्मनन्दि व्रत की बात करते हैं, दान की सब बात करते हैं परन्तु वहाँ विवेकसहित उसकी योग्यता-शक्ति कितनी है, तत्प्रमाण करते हैं। किसी की देखादेखी करके एकदम पड़े, फिर हाय... हाय... सहन नहीं होता, अब क्या करना? ऐसा नहीं हो सकता।

मुमुक्षु : शक्ति का माप कैसे निकालना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह शक्ति का माप स्वयं करे। दूसरे से कहाँ करना था।

१७वीं में भी ऐसा है, देखो! **'यथर्द्धि'** है न? दूसरे पद में तीसरा शब्द। **'यथर्द्धि'** है। अर्थात् कि अपनी ऋद्धि प्रमाण दान दे। १७वीं गाथा है, भाई! **अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य भव को पाकर भी जो मनुष्य, मोक्ष के लिये उद्यम नहीं करते हैं, घर में ही पड़े रहते हैं; वे मनुष्य मूढ़बुद्धि हैं। जिस घर में दान नहीं दिया जाता वह घर अत्यन्त कठिन मोह का जाल है। ऐसा भलीभाँति समझकर, अपने धन के अनुसार...** धन के अनुसार **भव्य जीवों को नाना प्रकार का दान करना चाहिए।** लक्ष्मी अनुसार राग घटाकर (दान देना चाहिए)। हमेशा कैसे हजार, पन्द्रह सौ, दो हजार की आमदनी कितनों को होती है। अधिक होवे उसकी खबर अपने को नहीं, परन्तु होती है न कितनों को? बहुतों को होती है, लो! ...भाई! किसी को पाँच-पाँच हजार की एक दिन की आमदनी, उसको दो-दो हजार की आमदनी, उसको तीन-तीन हजार की एक दिन की, हों! उसमें कोई दान देने का है या नहीं? आमदनी लाकर घर में ही डालनी है?

धर्मी जीव को विवेकवन्त को **'यथर्द्धि'। 'यथर्द्धि'** शब्द पड़ा है। जैसी उसके धन और लक्ष्मी की योग्यता हो, उस धन के अनुसार **भव्य जीवों को नाना प्रकार का दान...** अर्थात् अनेक प्रकार से। अभयदान, ज्ञानदान, औषधदान, यह आयेगा इसमें। समझ में आया? उसे देना। **उत्तम आदि पात्रों में दिया हुआ दान ही संसाररूपी समुद्र से पार करने में जहाज के समान है।** व्यवहार से ऐसे कथन चरणानुयोग में आते हैं। उन्हें पकड़ बैठे कि यहाँ राग से मोक्ष कहा है। मुनि को आहार देने से मोक्ष (होता है)। भाई! सुन तो सही अब। मुनि परद्रव्य है। उन्हें आहार देने का लक्ष्य है, वह शुभराग है। उस शुभराग से संवर और निर्जरा कभी नहीं होती। परन्तु अन्दर दृष्टि का भान है, क्रमशः यह राग भी टालकर मुझे स्वरूप की पूर्ण प्राप्ति करनी है। इसलिए इसे परम्परा से, जैसे मोक्षमार्ग दो प्रकार से कहा, ऐसे इस राग को बन्ध के अभाव का कारण कहा है। व्यवहार से कहा है, वास्तविक है नहीं। कहो, समझ में आया इसमें?

१८ गाथा में भी कुछ है। **'सामर्थ्ये सति'** है न? **जो मनुष्य समर्थ होने पर,... 'सामर्थ्ये'** है न दूसरी लाईन में? ये शब्द डालने का इन्हें विवेक बहुत है। **'सामर्थ्ये सति' निरन्तर न तो भगवान का दर्शन ही करते हैं,...** शक्ति होने पर भी भगवान के

दर्शन नहीं करता। **न उनका स्मरण करते हैं, न उनकी पूजा करते हैं, न उनका स्तवन करते हैं और न निर्ग्रन्थ मुनियों को भक्तिपूर्वक दान देते हैं; उन मनुष्यों का गृहस्थाश्रम, पत्थर की नाव के समान है। 'पाषाणनावा'** है न अन्दर शब्द? पत्थर की नाव। आचार्य हैं, सन्त हैं, मुनि हैं जंगल में। परन्तु राग की मन्दता करने की बात करते हैं न। इसके षट्कर्म में इस श्रावक को कर्तव्य होता है। पूरा दान का बड़ा अधिकार लिया है।

पापरूपी कुएँ की भेखड़ में भरा हुआ, ऐसा पाठ है। भेखड़ समझे हो? कुएँ में अन्दर होती है न? कुएँ के अन्दर। गहरे-गहरे अन्दर भेखड़ होती है। उसमें पैर गिर गया हो तो निकल नहीं सकता। आचार्य कहते हैं, पाप-कंजूसाई रूपी भेखड़, कुएँ की भेखड़ में पैर गिर गया हो, उसके उद्धार के लिये मैं दान का अधिकार कहूँगा। समझ में आया? है न दान का? कितना है यहाँ? दान का कहाँ लिया? दान में पहली गाथा है न? पहली गाथा है, देखो! चौथी गाथा है। ११३ पृष्ठ।

प्राप्तेऽपिदुर्लभतरेऽपि मनुष्यभावे
स्वप्नेन्द्रजालसदृशेऽपि हि जीवितौ।
ये लोभकूपकुहरे पतिताः प्रवक्ष्ये,
कारुण्यतः खलु तदुद्धरणाय किंचित्।।४।।

अहो! **अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर,...** है न? **स्वप्न और इन्द्रजाल के समान जीवन, यौवन...** क्षण में फूट जाएगा, समाप्त हो जाएगा। ऐसे **मनुष्य, लोभरूपी कुएँ में गिरे हुए हैं,...** भेखड़ की पोल होती है न? **गिरे हुए हैं, उनके उद्धार के लिये आचार्य कहते हैं कि मैं दयाभाव से कुछ कहूँगा।** दान का अधिकार। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

इसी प्रकार १७ में कहा न? पत्थर की नाव समान है। **गृहस्थाश्रम में रहनेवाला गृहस्थ भयंकर संसाररूपी समुद्र में नियम से डूबते हैं। डूबकर नष्ट हो जाते हैं। इसलिए आचार्य उपदेश करते हैं, भव्य जीव गृहस्थाश्रम को अपने जीवन, धन को पवित्र करना चाहिए।'** पवित्र धन, गृहस्थ कुछ होता नहीं। परन्तु उसमें राग की मन्दता से निमित्तपना उसमें आता है, इसलिए धन को पवित्र किया, ऐसा उपचार से कहने में

आता है। जड़ कहाँ पवित्र होता था? और उसमें दान का भाव शुभ है, वह भी व्यवहार पवित्र है। वास्तव में तो वह मलिन भाग है। परन्तु यहाँ गृहस्थाश्रम की स्थिति में पाप के बहुभाग से बचने के लिये ऐसे शुभभाव को पुण्य अर्थात् व्यवहार पुण्य को पवित्र कहता है। वास्तविक पुण्य तो आत्मा के पवित्र स्वभाव को पवित्रता कहते हैं। कहो, समझ में आया?

३१। दान यथाशक्ति देना। लो। **धर्मात्मा गृहस्थों को मुनि आदि उत्तम पात्रों को शक्ति के अनुसार दान भी अवश्य देना चाहिए। क्योंकि बिना दान के गृहस्थों का गृहस्थपना निष्फल है।** ३२ (गाथा)

गाथा ३२

दानं ये न प्रयच्छन्ति, निग्रन्थेषु चतुर्विधम।
पाशा एव गृहास्तेषां, बन्धनायैव निर्मिता:।।३२।।

अर्थ : जो पुरुष निर्ग्रन्थ यतीश्वरों को आहार, औषधि, अभय तथा शास्त्र इस प्रकार चार प्रकार के दान को नहीं देते हैं, उनके लिए घर जाल के समान केवल बाँधने के लिए ही बनाये गये हैं, ऐसा मालूम होता है॥३२॥

गाथा - ३२ पर प्रवचन

दानं ये न प्रयच्छन्ति, निग्रन्थेषु चतुर्विधम।
पाशा एव गृहास्तेषां, बन्धनायैव निर्मिता:।।३२।।

जो पुरुष, निर्ग्रन्थ यतीश्वरों को आहार, औषधि, अभय तथा शास्त्र... चार प्रकार के दान है न? नहीं देते। शास्त्रदान। **इन चार प्रकार के दान को नहीं देते हैं, उन्होंने अपने घर, जाल के समान केवल बाँधने के लिये ही बनाये हैं, ऐसा मालूम होता है।** कड़क, भाषा भी कड़क। मुनि उपदेश करते हैं, उसमें जरा कड़काई करते हैं। करुणाबुद्धि है, भाई! ऐसा मनुष्य देह मिला, भाई! प्रभु! और इतनी भी राग की मन्दता

नहीं की तो तूने क्या किया ? जन्मकर क्या किया ? समझ में आया ? पशु भी आटा खाता है, पशु भी मैथुन सेवन करता है। इस परिग्रह को संग्रह करता है, चींटियाँ भी संग्रह करती है। यह चींटियाँ होती है न ? चींटियाँ। वे भी... संग्रह करती हैं। उनमें और तुझमें क्या अन्तर पड़ा ?

कहते हैं कि यथाशक्ति आहार, औषध, अभय, शास्त्र का दान दे। नहीं तो घर जाल समान है। फँसाने के लिए जाल है। चौरासी के अवतार में फँसने के लिए संसार है। नाम दिये हैं न फिर ? ३३।

गाथा ३३

अभयाहारभैषज्य, -शास्त्रदाने हि यत्कृते।
ऋषीणां जायते सौख्यं, गृही श्लाघ्यः कथं न सः।।३३।।

अर्थ : जिस गृहस्थ के अभयदान, आहारदान, औषधिदान तथा शास्त्रदान के करने पर यतीश्वरों को सुख होता है, वह गृहस्थ क्यों नहीं प्रशंसा के योग्य हैं ? अर्थात् उस गृहस्थ की सर्वलोक प्रशंसा करता है इसलिए ऐसा उत्तमदान गृहस्थों को अवश्य देना चाहिए॥३३॥

गाथा - ३३ पर प्रवचन

अभयाहारभैषज्य, -शास्त्रदाने हि यत्कृते।
ऋषीणां जायते सौख्यं, गृही श्लाघ्यः कथं न सः।।३३।।

भाषा (भी क्या करे ?) चरणानुयोग की पद्धति है। **जिस गृहस्थ के द्वारा अभयदान, आहारदान, औषधिदान और शास्त्रदान के करने पर यतीश्वरों को अत्यन्त सुख होता है... 'ऋषीणां जायते सौख्यं'।** अर्थात् कि उन्हें आहार मिलता है, इतना शुभभाव वहाँ उसे हुआ है न ? इसलिए इन्हें भी वहाँ शरीर में अनुकूल निमित्तरूप है। अर्थात् **'ऋषीणां जायते सौख्यं'** (कहा है)। चरणानुयोग की पद्धति।

'गृही' वह गृहस्थाश्रम क्यों श्लाघ्य नहीं होगा? वह गृहस्थाश्रम **'श्लाघ्यः कथं न सः'**। वह गृहस्थाश्रम प्रशंसनीय क्यों नहीं होगा? ऐसा कहते हैं। वह श्लाघनीय है। अपने पहले कह गये थे, २१ गाथा।

जो कोई धर्मात्मा आत्मा के ज्ञान, दर्शन सहित ऐसे दानादि के भाव करता है, वह मनुष्य को सम्मत वन्द्य क्यों नहीं होगा? ऐसा २१ गाथा में कहा है। वह लोक को मान्य क्यों नहीं होगा? प्रशंसनीय क्यों नहीं होगा? होगा ही। भले गृहस्थाश्रम में पड़ा हो, परन्तु ऐसे भाववाला जीव धर्मात्मा जगत को श्लाघनीय है—प्रशंसनीय है, वन्द्य है, स्तुति करनेयोग्य है। यह २०-२१ गाथा में आ गया है, पहले कह गये हैं।

मुमुक्षु : अभयदान...

पूज्य गुरुदेवश्री : अभयदान (अर्थात्) किसी प्राणी को नहीं मारना। है तो विकल्प। मार शके, न मार सके, इसका प्रश्न अभी नहीं है। उस पर को मार सकता है या जिला सकता है, यह आत्मा की ताकत नहीं है, परन्तु पर प्राणी को जिलाने के लिये विकल्प उठे कि इसे सुख दूँ अथवा मरे नहीं, दुःख न हो—ऐसे विकल्प को व्यवहार से अभयदान कहा जाता है। निश्चय से आत्मा में रागरहित की अन्दर में स्थिरता होना, उसे अभयदान कहते हैं। आत्मा को रागरहित स्थिरता करना, उसका नाम भगवान परमार्थ से अभयदान कहते हैं। परन्तु स्वयं को जैसे अभय दे, वैसे दूसरे जीव को भी न मारने का भाव ज्ञानी को होता है और उसे अभयदान कहा जाता है। कहो, समझ में आया? वे श्लाघनीय क्यों नहीं होंगे? यह ३३ (हुई)। ३४ (गाथा)।

गाथा ३४

समर्थोऽपि न यो दद्यात्, यतीनां दानमादरात्।
छिनत्ति स स्वयं मूढः, परत्र सुखमात्मनः।।३४।।

अर्थ : समर्थ होकर भी जो पुरुष आदरपूर्वक यतीश्वरों को दान नहीं देता, वह मूढ पुरुष आगामी जन्म में होनेवाले अपने सुख को स्वयं नाश करता है॥३४॥

गाथा - ३४ पर प्रवचन

समर्थोऽपि न यो दद्यात्, यतीनां दानमादरात्।
छिनत्ति स स्वयं मूढः, परत्र सुखमात्मनः।।३४।।

भाषा वापस विवेकवाली इतनी। आदर से; ऐसा का ऐसा आहार दे देवे, ऐसा नहीं। **समर्थ होकर भी जो पुरुष, आदरपूर्वक यतीश्वरों को (मुनियों को) दान नहीं देते; वह मूढ़ पुरुष आगामी जन्म में होनेवाले अपने सुख का स्वयं नाश करता है।** कहो, समझ में आया? ऐसा शुभभाव जिसे होता है। नहीं तो पाप बाँधेगा और आगे दुःख के भोग करेगा। कहो, समझ में आया? ३५ (गाथा)

गाथा ३५

दृषन्नावसमो ज्ञेयो, दानहीनो गृहाश्रमः।
तदारूढो भवाम्भोधौ, मज्जत्येव न संशयः।।३५।।

अर्थ : जो गृहस्थाश्रम दानकर रहित है, वह पत्थर की नाव के समान है तथा उस गृहस्थाश्रमरूपी पत्थर की नाव में बैठनेवाला मनुष्य नियम से संसाररूपी समुद्र में डूबता है॥३५॥

गाथा - ३५ पर प्रवचन

दृषन्नावसमो ज्ञेयो, दानहीनो गृहाश्रमः।
तदारूढो भवाम्भोधौ, मज्जत्येव न संशयः।।३५।।

'दृष'। 'दृष' है न? पत्थर। **जो गृहस्थाश्रम दान से रहित है,...** जिस गृहस्थाश्रम में दान नहीं है, अभयदान, औषधदान, ज्ञानदान, आहारदान ऐसा जहाँ दान नहीं है, **वह पत्थर की नाव के समान है...** है तो श्रावक का अधिकार, परन्तु राग मन्द करने के लिये उसके योग्य मन्द राग हो, इससे सामान्य उपदेश भी किया है। **पत्थर की नाव के**

समान है... जिस गृहस्थाश्रम में दान नहीं और अकेला संग्रह करता है, वह पत्थर की नाव समान है। **ऐसे गृहस्थाश्रमरूपी पत्थर की नाव पर बैठने वाला मनुष्य, नियम से संसाररूपी समुद्र में डूबता है। 'मज्जत्येव न संशयः'** सेठी! जैसे मिथ्यादृष्टि डूबता है, वैसे दान नहीं देनेवाले—लोभ को नहीं घटानेवाले, मन्द राग नहीं करनेवाले भी **'मज्जत्येव न संशयः'** वे भी चार गति में डूबते हैं। इसमें संशय करनेयोग्य नहीं है। कहो, समझ में आया? अन्तिम गाथा पहले कह गये हैं।

गाथा ३६

समयस्थेषु वात्सल्यं, स्वशक्त्या ये न कुर्वते।
बहुपापावृतात्मानः, ते धर्मस्य परान्मुखाः।।३६।।

अर्थ : जो मनुष्य साधर्मीसज्जनों में शक्ति के अनुसार प्रीति नहीं करते, उन मनुष्यों की आत्मा प्रबल पाप से ढकी हुई है और वे धर्म से पराङ्मुख हैं अर्थात् धर्म के अभिलाषी नहीं है; इसलिए भव्यजीवों को साधर्मी मनुष्यों के साथ अवश्य प्रीति करनी चाहिए॥३६॥

गाथा - ३६ पर प्रवचन

समयस्थेषु वात्सल्यं, स्वशक्त्या ये न कुर्वते।
बहुपापावृतात्मानः, ते धर्मस्य परान्मुखाः।।३६।।

जो मनुष्य साधर्मीजनों में... साधर्मीजनो। समझ में आया? यशोविजयजी कहते हैं, 'साचुं सगपण साधर्मी तणुं रे लाल... और सर्वे झंझाल रे... भविकजन...' बाकी बाकी सब जंजाल। 'साचुं सगपण साधर्मी तणुं रे लाल...' सच्चा सम्बन्ध साधर्मीजनों का है। धर्म-श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र आदि यथायोग्य अपने को योग्य हो, ऐसे साधर्मी के प्रति का वात्सल्य सच्चा सम्बन्ध वह है। मिथ्यादृष्टि अपने माता-पिता या परिवार हो तो भी उनका सच्चा सम्बन्ध गिनने में नहीं आता। कहो, समझ में आया इसमें?

साधर्मी सज्जनों में, शक्ति के अनुसार प्रीति नहीं करते, उन मनुष्यों की आत्मा प्रबल पाप से ढकी हुई है और वे धर्म से परान्मुख हैं अर्थात् धर्म के अभिलाषी नहीं है; इसलिए भव्य जीवों को साधर्मी मनुष्यों के साथ... क्यों? न धर्मो धार्मिके बिना। धर्म, धर्मी जीव के बिना नहीं होता और जिसे धर्म प्रेम हो उसे धर्मी के प्रति प्रेम हुए बिना नहीं रहता, नहीं तो उसे अन्दर का धर्म भी नहीं रह सकता। यह दान का अधिकार पूरा हुआ। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)